^Hke*

Hkkx &÷

b'ojh; idfr e **nkgjiu** (duality) d vVy fu;e vulkj] gj ,d pht dk **^tkMk*** cuk gvk g A tl fd &

l[k	&	n[k
lnh	&	xeh
vPNk	&	cjk
Åp	&	uhp
i.;	&	iki
l;kj	&	?k.kk
x.k	&	vox.k
thou	&	ekr
Lox	&	ud
fnu	&	jkr
idk'k	&	v/dkj
BMk	&	xje
nor	&	nR;
ijekRek	&	ek;k] vkfn A

tgk & gekjh cf¼ d fodkl }kjk] uohu fon;k vkj vk/fud foKku d ek/;e l &

l[k] vkjke] Hkkx] foykl] eukjtu] fnekxh fQykIQh] [;kyh mMku] /kfed Kku] uohu lH;rk dh

dh **ikfIr;k pkVh rd fodfIr** gk pdh g] **ogk&}r** d fu;e vulkj] Åij fy[k rrk d **Bhd foijhr**]

mlh vuikr e vkj rh{k.krk l] llkj e &

n[k] dy'k] b";k] }"k] oj] fojk/] Qjc] [knxjth] d<u] v'kkfr vkfn] **vox.kk dk 0;ogkj c< jgk g** A

^tk e dhvk lk e ikbvk nkl u nht voj tuk* d vVy fu;e vulkj] gekj [;kyk] Hkkoukvk vkj dek dk **Qy** ge vo'; Hkkxuk iMrk g A

bl f=k&x.kh ekf;dh eMy dh lhek e **^l[k d lkFk n[k* ; fpidk gvk g tl ^idk'k d ihN v/dkj* vkj ^thou d ihN ekr*** A

bl fy, tc ge ^l[k* d lk/u djr g rk bl d **vrxr Ni g, ^n[k* d fy, Hkh ge r;kj jguk pkfg,** A

tru cgr l[k d dh, n[k dk dhvk u dkb AA (i- ûþüø)

tue r ej.k gj[k r lkx Hkkx r jkx AA
Åp r uhp ukuk l ep AA
jkt r eku vfHkeku r ghu AA
ifojfr ekjx ojrfr fcuklu AA (i- ûýÿþ&ÿ)

tr jl ljhj d rdrd yxfg n[k AA (i- ûüø÷)

ukud cky.k >[k.kk n[k NfM exhvfg l[k AA
l[k n[k nb nfj diM ifgjfg tkb eu[k AA (i- ûþö)

ftl l[k d fy, ge bruh fo|k vkj foKku i<r g vkj i;Ru djr g] **mlh l[k d ihN Ni g, ^n[k* dk vkuk Hkh vfuok; g** A

nlj 'kCnk e] ;g **ekf;dh vkj ekufld l[k] ^o{k dh Nk;k* ;k ^ckny* dh rjg vLFkk;h ,o** &

^Hke&Hkyko* gh g A

fcj[k dh Nkbvk flm jx yko AA
vkg fcul mg efu iNrko AA (i- üöø)

ck: Hkhfr cukb jfp ifp jgr ugh fnu pkfj AA
rl gh bg l[k ekbvk d mjf>vk dgk xokj AA (i- öýý)

e?k dh Nkbvk tl cjrugkj AA

rlk ijip ekg fcdkj AA (i· ûûþÿ)

;fn gj ekf;dh l[k d ckn n[k vfuok; g rk ,l **vLFkk;h l[k dh ^ykyl k* Hkh** &

^Hke&Hkyko* gh g A

l[k dm ekx lHk dk n[k u ekx dkb AA
l[k dm n[k vxyk euef[k c> u gkb AA (i· ÿ÷)

l[k ekxr n[k vkxy gkb AA
lxy fodkjh gk# ijkb AA (i· üüü)

l[k ekxr n[k vkx vko AA
lk l[k geg u ekfxvk Hkko AA (i· ýýú)

त्रि–गुणी मायिकी शारीरिक, मानसिक और दिमागी 'प्राप्तियों' को **सुख का 'साधन' समझना भी हमारा –**

^Hke&Hkyko* gh g A

यदि हमारी शारीरिक, दिमागी और मानसिक प्राप्तियों से सदैवीय और सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती होती तो हमारी –

ऊँची विद्यक प्राप्तियों
आधुनिक विज्ञान
तीक्षण बुद्धि
नवीन सभ्यता

के साथ अब तक समस्त संसार– दैवीय 'स्वर्ग' बन गया होता, जहाँ 'दुख–क्लेश' कतई ही न रहता ।

परंतु प्रत्यक्ष ज़ाहिर है कि **ऊपर बताई अनन्त दिमागी और मानसिक साधनाओं और प्राप्तियों के बावजूद, समस्त 'इन्सानियत' दिन–ब–दिन गिरती और दुखी होती जाती है** और हमारे **'अवगुण', घटने की बजाय, बढ़ते जा रहे हैं**, जिस कारण संसार में –

वैर, विरोध, ईर्ष्या, रिश्वत, बेईमानी, धोखेबाज़ी, जलन, कुढ़न, निन्दा, चुगली, झूठ, फ़रेब, स्वार्थ, दुख, क्लेश, अशांति, डर, चिंता, द्वेष, बदले की भावना, तअस्सुब, ज़ुल्म, लड़ाई, झगड़े, गुटबंदी, विश्वासघात, छीना झपटी, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, तृष्णा, मैं–मेरी, आदि **का बोलबाला और व्यवहार**

'ज़ोरों' से प्रवृत्त है ।

हमारी **शारीरिक 'सेहत'** और **'मानसिक' कुशलता** का भी यही हाल है ।

जैसे – जैसे 'चिकित्सा विज्ञान' (medical science) **का विकास हो रहा है,** वैसे – वैसे संसार में **शारीरिक बीमारियाँ** भी बढ़ रही हैं और साथ ही **मानसिक बीमारियों** (mental diseases) **में बढ़ोत्तरी हो रही है** । इसी कारण –

ब्लॅड प्रेशर (blood pressure)
मानसिक तनाव (nervous tension)
नसों की कमज़ोरी (neuras thenia)
दिमागी दौरा (hysteria)
मिर्गी (epilepsy)
नसों का रोग (nervous ailments)
पागल पन (insanity)

आदि, **अति मौलिक बीमारियाँ भी बढ़ रही हैं ।**

''मरज़ बढ़ती गई जूँ जूँ दवा की''

इसका मतलब यह नहीं कि हमें विद्या अथवा विज्ञान **नहीं पढ़नी** या विज्ञानिक प्राप्तियों का लाभ **नहीं लेना** – परंतु **केवल मात्र** दिमागी, **विद्यक और विज्ञानिक प्राप्तियों को ही सदैव सुख का इकलोता या केवल मात्र साधन समझकर इसी में ही गलतान और मस्त रहना हमारी बड़ी 'भूल' है** और ^Hke&Hkyko* g A

गुरबाणी अनुसार **सच्चे – पवित्र, सदैव, अटल सुख की प्राप्ति के लिए एक मात्र साधन** केवल आत्मिक **'तत् – ज्ञान'** अथवा **'नाम'** अथवा **'प्रभु शरण' ही बताया गया है –**

सरब सुखा निधि चरण हरि भउजलु बिखमु तरे ।। (पृ. १३६)

सरब सुखा का दाता सतिगुरु ता की सरनी पाईऐ ।। (पृ. ६३०)

जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह ।। (पृ. १४२७)

प्रभ की सरणि सगल भै लाथे
दुख बिनसे सुखु पाइआ ।। (पृ. ६१५)

नामु धिअसावै काब फल पावै सो जनु सुखीआ हूआ ।। (पृ. ४०७)

सरब खेम कलियाण निधि राम रामु जपि सारु ।। (पृ. २६७)

जिस तरह – सूर्य का प्रकाश आने पर 'अँधकार' और उसमें से उत्पन्न **सारे 'दुख–क्लेश', 'भ्रम–भुलाव' अपने आप अलोप हो जाते हैं –**
निकालने नहीं पड़ते

उसी तरह – मन के अन्दर **'आत्म–प्रकाश' अथवा 'नाम' उदय होने पर हमारे सभी मानसिक 'भ्रम–भुलाव' अपने आप सहज–स्वभाव अलोप हो जाते हैं ।**

ijr gekjh rh{k.k cnf/ vkj oKkfud peRdkjk l **pdkpk/ gvk ^eu* bu xjck.kh d lPp&ifo=k min'kk dk ekuu d fy, r;kj gh ugh]** ;k **Åijh eu l gh ^gkeh* Hkj nrk g ;k tku c> dj ^epyk gvk* g** A

gekj eu dh ;g vKkurk i.k voLFkk gh **ekufld ^Hkex<* d v/dkj dk** &

^Hke&Hkyko* g A

bl rjg vkfRed ^rr&Kku* vFkok ^uke* d fcuk **f=k x.kh ekf;dh eMy d ^vgeoknh*** &

[;ky] lkp] jh>] pko] fu'p;] Jn/k] Hkkouk] ekg] ihr] l;kj] 0;ogkj] fo|k] foKku] de] /e] fØ;k] ipkj] ikflr;k] c<liu] thou] thou&l/] tUe] eR;] vkfn] **lc dN] ^o{k dh Nk;k* dh rjg** &

vLFkk;h] n[kk dk dkj.k] dy'kk dk ey] **vKkurk dk v/ xckj**] ud ?kkj dk nokj vkj ekufld **^Hke&Hkyko*** gh g A

साधो इहु जगु भरम भुलाना ।।
राम राम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ।। (पृ. ६८४)

vk'p; dh ckr ;g g fd bru &

/ek] /e xFkk] /e ipkj] uohu fo|k] oKkfud ikflr;k **d ckotn** ge vHkh rd bl cM **'भ्रमगढ़' के अँध गुबार के 'भ्रम–भुलावों' का –**

पता ही नहीं लगा

भेद नहीं आया
निश्चय नहीं आया
अनजान हैं
बेपरवाह हैं या
जान बूझ कर 'मचले हुए' हुए हैं ।

हमें विद्या और विज्ञान की पढ़ाई और खोज करनी है और अपने मायिकी जीवन में विचरण करते हुए इन से लाभ लेना है, परंतु केवल मात्र इन दिमागी –

विद्यक पढ़ाईयों
विज्ञानिक प्राप्तियों
सयानपों
चतुराइयों
शारीरिक सुख
मानसिक विलास
धार्मिक ज्ञान
वाद – विवाद
दिमागी फिलासफियों
जीवन की सफलताओं
नवीन सभ्यता

को ही 'जीवन – आधार' और 'जीवन – मनोरथ' समझकर इनमें ही 'ग्रसित रहना' हमारा मानसिक 'भ्रम – भुलाव' है ।

चतुराई सिआणपा कितै कामि न आईऐ ।। (पृ. ३६६)

कथनी कहि भरमु न जाई ।।
सभ कथि कथि रही लुकाई ।। (पृ. ६५५)

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै ।।
बाँधनि बाँधिआ सभु जगु भवै ।। (पृ. ७२८)

गिआनु गिआनु कथै सभु कोई ।।
कथि कथि बादु करे दुखु होई ।। (पृ. ८३१)

मनमुख गिआनु कथे न होई ।।

फिरि फिरि आवै ठउर न कोई ।। (पृ १०५१)

विणु गुर सबद गिआनु है फिका आलाउ । (वा. भा. गु. २७/१७)

इस तरह मायिकी और **मानसिक प्राप्तियों में ही ग्रसित होकर आत्मिक 'जीवन सेध' को 'भूलना' ही हमारा –**

'भ्रम–भुलाव' है ।

कामणि पिरहु भुली जीउ माइआ मोहि पिआरे ।।
झूठी झुठि लगी जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे ।। (पृ. २४४)

राज रंग माइआ बिसथार ।। इन ते कहहु कवन छुटकार ।।
असु हसती रथ असवारी ।। झूठा डंफु झूठु पासारी ।।
जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना ।।
नामु बिसारि नानक पछुताना ।। (पृ. २८८)

आसा भरम बिकार मोह इन महि लोभाना ।।
झूठु समग्री मनि वसी पारबहमु न जाना ।। (पृ. ८१५)

जहाँ हमने मायिकी विद्या और विज्ञान की पढ़ाई करनी है, उसके **साथ–साथ** अपने **असली और सच्चे 'जीवन मनोरथ' को याद रखना है** और **इस आत्मिक 'जीवन सेध' के लिए प्रयत्न भी करना है ।**

अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ बादि ।।
अकली साहिबु सेवीए अकलि पाईऐ मानु ।।
अकली पड़ि कै बुझीऐ अकली कीचै दानु ।।
नानकु आखै राहु एहु होरि गलाँ सैतान ।। (पृ १२४५)

इन पंक्तियों का मतलब यह है कि जो हमें दिमागी 'अक्ल' प्रभु ने बख्शी है । उस को **केवल मात्र मायिकी और मानसिक पढ़ाइयों और फिलासफियों के वाद–विवाद और प्राप्तियों में ही व्यर्थ नहीं करना**, बल्कि इसी 'अक्ल' के साथ अपने 'साहिब' अथवा **परमात्मा को याद करना है** और **उस की दरगाह में 'सम्मान' प्राप्त करना है** । इस तरह **बख्शी हुई 'बुद्धि' द्वारा 'ब्रहम ज्ञान' को बूझना है** और आत्मिक ज्ञान अथवा **'नाम' के प्रकाश में** अपना तन–मन–धन गुरू को सौंप कर, **आत्मिक प्रकाश से रोशन हुई 'अक्ल' अथवा 'विवेक बुद्धि' के माधयम से आत्मिक 'तत्–ज्ञान' का 'दान' करना है** । गुरू साहिब ने स्पष्ट रूप में बताया है कि 'परमार्थ' अथवा 'आत्मिक मार्ग' का

यही एक मात्र 'साधन' है ।

'आत्मिक प्रकाश' अथवा 'नाम' के बिना केवल मात्र पदार्थिक, विद्यक, वैज्ञानिक और सामाजिक **पढ़ाईयाँ और प्राप्तियाँ मायिकी 'शैतान' ही हैं, जो हमें 'आत्मिक जीवन मनोरथ' से दूर ले जाती हैं ।**

दूसरे शब्दों में हमारे जीवन के दो पक्ष हैं –

1. **'आत्मिक जीवन' को 'भुलाकर'** या बेपरवाह अथवा मनमुख होकर – **केवल मात्र मायिकी जीवन में 'खचित' होना ।**

मनमुख ऊधा कउलु है ना तिसु भगति न नाउ ।।
सकती अंदर वरतदा **कूड़ु तिस का है उपाउ ।।** (पृ ५११)

भरण पोखण संगि अउध बिहाणी ।।
जै जगदीस की गति नही जाणी ।। (पृ ७४३–४)

धिगु एह आसा दूजे भाव की जो मोहि माइआ वितु लाए ।।
हरि सुखु पल्रि तिआगिआ नामु विसारि दुखु पाए ।।
मनमुख अगिआनी अंधुले
जनमि मरहि फिरि आवै जाए ।। (पृ ८५०–५१)

इसु जग महि मोहु हे पसारा ।।
मनमुख अगिआनी अंधु अंधारा ।।
धंधै धावतु जनमु गवाइआ
बिनु नावै दुखु पाइआ ।। (पृ १०६७)

माइआ मोहु बहु चितवदे बहु आसा लोभु विकार ।।
मनमुखि असथिरु ना थीऐ
मरि बिनसि जाइ खिन वार ।। (पृ १४१७)

2. **मायिकी जीवन के साथ–साथ आत्मिक जीवन की पढ़ाई और खोज करनी ।**

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि ।।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजनु नालि ।। (पृ १३७५–६)

मुख की बात सगल सिउ करता ।।
जीअ संगि प्रभु अनुपा धरता ।। (पृ ३८४)

कब को भालै घुंघरू ताला कब को बजावै रबाबु ।।

आवत जात बार खिनु लागै ।।
हउ तब लगु समारउ नामु ।। (पृ. ३६८)

जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि ।।
तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ।।
जिह प्रसादि गृह संगि सुख बसना ।।
आठ पहर सिमरहु तिसु रसना ।।
जिह प्रसादि रंग रस भोग ।।
नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग ।। (पृ. २६६)

पहली अवस्था में हम **'मनमुख' हो जाते हैं** और **माया में खचित होकर दुख–सुख भोगते हैं** और आवागमन में विचरण करते **हमारी 'आहें' कभी नहीं खत्म होती** ।

तुधहु भुले सि जमि जमि मरदे
तिन कदे न चुकनि हावे ।। (पृ. ६६१)

जमि जमि मरै मरै फिरि जंमै ।।
बहुतु सजाइ पइआ देसि लंमै ।।
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा
ता दुखु सहै पराणीआ ।। (पृ १०२०)

दूसरी अवस्था में 'जीव' अपने **कर्ता की बख्शी हुई मायिकी देन का आनन्द लेता हुआ भी, इसमें ग्रसित अथवा खचित नहीं होता** और अपने **'दाता' अकाल पुरूष को भी याद रखता है** । इस तरह यह गुरमुख –

'इह लोक सुखीए परलोक सुहेले ।।
नानक हरि प्रभि आपहि मेले ।।' (पृ २६२–३)

वाली अवस्था प्राप्त करता है ।

गुरमुखा के मुख उजले गुर सबदी बीचारि ।।
हलति पलति सुखु पाइदे जपि जपि रिदै मुरारि ।। (पृ. ३०)

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि ।।
राम नामु अंतरि उरि धारि ।। (पृ. २६३)

हलति पलति मुखु ऊजला नह पोहै तिसु माइ ।। (पृ. ३००)

हलति पलति राम नामि सुहेले गुरमुखि करणी सारी ।। (पृ. ४४३)

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ।।
हंसदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ।।(पृ. ५२२)

राम के गुन गाउ ।।
हलतु पलतु होहि दोवै सुहेले अचरज पुरखु धिआउ ।। (पृ. ८६५)

इस विचार का ज़रुरी नुक्ता 'माया के पति' **अकाल पुरूष को याद करना** अथवा **'सिमरन' करना है ।**

यदि हम 'दाता' की **याद में उसकी देन का आनन्द लेते हैं तो –**

1. **एक तरफ 'मायिकी जीवन का सुख'** और
2. **दूसरी तरफ 'तत्–ज्ञान' का प्रकाश** अथवा **'नाम' का आनन्द लेते हैं ।**

इस तरह हमारे दोनों हाथों में 'लड्डू' होते हैं ।

यदि **'दाता को भुला कर'** 'माया' की देन को भोगते हैं तो **यही माया 'नागिनी' बनकर हमें खाती है** और हमारा जीवन दुखदायी बना रहता है ।

माइआ होई नागनी जगति रही लपटाइ ।।
इस की सेवा जो करे तिस ही कउ फिरि खाइ ।। (पृ. ५१०)

माइआ ममता मोहणी जिनि विणु दंता जगु खाइआ ।।
मनमुख खाधे गुरमुखि उबरे जिनी सचि नामि चितु लाइआ ।।
(पृ. ६४३)

इस तरह अपने **केंद्र** अथवा **अकाल पुरूष को 'भूलना'** अथवा **'विमुख होना'** ही हमारी **मूल और दीर्घ भूल या –**

'भ्रम–भुलाव' है ।

हम परदेशों में कमाई करने जाते हैं और वहाँ ही सारी उम्र व्यतीत करते हैं । परदेशों में रहते हुए अपने जीवन के सुख आराम के लिए –

घर बनाते हैं
बच्चे पालते हैं
बच्चों को पढ़ाते हैं
उनको काम–धंधों में लगाते हैं
उनकी शादी करते हैं
दोस्त–मित्र बनाते हैं

रिशतेदारियाँ बना लेते हैं
भाईचारे में व्यवहार करते हैं
वहाँ की बोली बोलते हैं
वहाँ की सभ्यता सीखते हैं
वहाँ ही दिल लगा लेते हैं
वहाँ के शहरी (citizen) बन जाते हैं ।

यह सब कुछ करते हुए भी हम अपनी पुरानी **'संस्कृति' और 'सभ्यता' को नहीं छोड़ते और अपने 'निजी देश' और 'कौम' को नहीं भूलते** । हमारे अंदर अपने असली 'देश' और 'कौम' का 'आर्कषण' **बना रहता है** और जब भी हमें मौका मिलता है हम अपने 'देश' को फेरे डालते हें और अपने **'निज घर'** और संगियों, साथियों और सबंधियों को मिल कर पुरानी, मीठी और स्नेहमयी, यादें ताज़ा करते हैं, जिससे मन को अति खुशी प्राप्त होती है ।

परंतु परदेशों में रहते हुए हमारी 'औलाद', दो – तीन पीढ़ीयों के बाद, अपने नसली 'निज देश' से बेपरवाह हो जाती है और अपने नए देश के पक्के वासी हो जाते हैं और वहाँ के रस्म – रिवाज और सभ्यता में ही 'घुल मिल' जाते हैं । यदि इनको उनके 'पैतृक देश' या 'सभ्यता' के विषय में जिक्र करें तो उनको कोई **दिलचस्पी नहीं होती बल्कि ऊपरे से मन से ही स्वीकारते हैं** ।

मनु परदेसी जे थीऐ सभु देसु पराइआ ।। (पृ. ७६७)

ठीक इसी तरह सृष्टि के **सभी 'जीव'** –ब्रहम – मंडल, 'बेगमपुरा' अथवा **'सच – खंड' के शहरी हैं** और **'मायिकी मंडल' में ईश्वरीय हुक्म अनुसार किसी** मनोरथ के लिए आए हैं ।

भई परापति मानुख देहुरीआ ।।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ।। (पृ. १२)

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला ।।
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला ।। (पृ. १३)

प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि ।।
लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि ।। (पृ. ४३)

भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ।।

मानस जमन का एही लाहु ।। (पृ. ११५६)

आइओ सुनन पड़न कउ बाणी ।।
नामु विसारि लगहि अन लालचि बिरथा जनमु पराणी ।। (पृ. १२१६)

'ब्रहम–मंडल' ही सारे जीवों का **असली, सच्चा, 'निजी' देश है**, और **मायिकी मंडल 'परदेश' है ।**

इस मायिकी मंडल में **कई जन्मों से विचरण करते हुए** धीरे–धीरे हमें अपना असली **'निज देश' अथवा 'ब्रहम–मंडल' कतई 'भूल' गया है । 'कूड़ संसार' रूपी 'परदेश' को अपना 'निजी देश' समझकर, इसी में ही 'खचित', 'ग्रसित' अथवा खोये हुए हैं ।**

गुरबाणी में हमारी इस अधोगति के विषय में यूँ ताड़ना की है –

जो घरु छडि गवावणा सो लगा मन माहि ।।
जिथै जाइ तुधु वरतणा तिस की चिंता नाहि ।। (पृ. ४३)

लाज न मरहु कहहु घरु मेरा ।।
अंत की बार नही कछु तेरा ।। (पृ. ३२५)

रतन जवेहर बनजनि आइओ कालरु लादि चलाइओ ।।
जिह घर महि तुधु रहना बसना सो घरु चीति न आइओ ।।(पृ. १०१७)

मनमुख हउमै माइआ सूते ।।
अपणा घरु समालहि अंति विगूते ।। (पृ. १०४६)

कई जन्मों से इस मायिकी मंडल में विचरण करते और ग्रसित होते हुए यह 'झूठा संसार' ही अपना 'निज घर' प्रतीत और दृढ़ हो चुका है ।

जग झूठे कउ साचु जानि कै ता सिउ रुच उपजाई ।। (पृ. ७१८)

सति होता असति करि मानिआ जो बिनसत सो निहचलु जानथ ।।
पर की कउ अपनी करि पकरी ऐसे भूल भुलानथ ।। (पृ. १००१)

आदि से ही गुरूओं, अवतारों, संतों, भक्तों और महापुरूषों ने अपने उपदेशों द्वारा स्पष्ट रूप से, हमें बताने और निश्चय कराने की कोशिश की है कि **यह दृष्टमान मायिकी संसार 'झूठा' है और जीव के लिए 'परदेश' है, और**

'ब्रहम मंडल' ही जीव का असली, सच्चा 'निज देश' है, जिस के लिए जीव को प्रेरना करते आए हैं ।

डडा डेरा इहु नही जह डेरा तह जानु ।। (पृ. २५६)

भभा भरमु मिटवहु अपना ।।
इआ संसारु सगल है सुपना ।। (पृ. २५८)

माइआ के माते तै उठि चलना ।।
राचि रहिओ तू संगि सुपना ।। (पृ. ८८६)

परंतु इतने धर्मों, धार्मिक प्रचार की 'ताड़ना' के बावजूद, **'जीव' को अभी तक 'ब्रहम मंडल' के अस्तित्व और सच्चाई के विषय में निश्चय नहीं आया** और हम उसी तरह इस **'परदेश'** रूपी संसार को ही 'निज देश' एवं सचा समझे हुए हैं ।

कोठे मंडप माड़ीआ लगि पए गावारी ।।
जिनि कीए तिसहि न जाणनी मनमुखि गुबारी ।। (पृ. ७८८)

इहु संसारू सगल है सुपनो देखि कहा लोभावै ।।
जो उपजै सो सगल बिनासै रहनु न कोऊ पावै ।। (पृ. १२३१)

गुरबाणी सुन, पढ़, गाकर और इसकी व्याख्या करते हुए भी गुरबाणी की सच्चाई पर हमें निश्चय नहीं आता । वैसे तो हम धर्म के प्रचारक और ठेकेदार बनकर **'भले–भद्र' बने फिरते हैं**, परंतु हमारा **गुरबाणी की सच्चाई पर ऊपरी सा निश्चय ही होता है** ।

सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पड़ि बुझहि भारु ।।
तृसना अहिनिसि अगली हउमै रोगु विकारु ।। (पृ. २०)

तृहु गुणा विचि सहजु न पाईऐ त्रै गुण भरमि भुलाइ ।।
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहु घुथा जाइ ।। (पृ. ६८)

पड़हि गुणहि तूं बहुतु पुकारहि विणु बूझे तूं डूबि मुआ ।।(पृ. ४३५)

सुणि सासत्र तूं न बुझही ता फिरहि बारो बार ।। (पृ. ४६२)

उपदेसु करे करि लोक दृड़ावै ।।
अपना कहिआ आपि न कमावै ।। (पृ. ८८७)

इस तरह 'झूठी दुनिया' अथवा **'परदेश' को ही अपना 'निज–देश'**

'समझना' और इसी में 'ग्रसित होना' ही हमारा बड़ा मानसिक –

'भ्रम–भुलाव' है ।

'बहम–मंडल' अथवा आत्मिक 'बेगमपुरा', 'अबिचल नगर', 'निज घर' को 'भूलना', अथवा उसकी तरफ से 'बेपरवाह' होना ही हमारा बड़ा मानसिक –

'भ्रम–भुलाव' है ।

चौरासी लाख योनियों के जीव अनजाने और भोले–भाव ही अपने 'कर्ता'– परमेश्वर के 'हुक्म' में विचरण करके जीवन व्यतीत करते हैं और अपने–अपने 'साथ लिख' **हुक्म अनुसार कर्म–क्रिया करते हैं ।**

उनके, प्रभु **हुक्म के बहाव में 'सुर' किए सारे कर्म** सहज–स्वभाव, भोले–भाव और अपने–आप ही 'सेवा', 'परोपकार', 'नेकियाँ', 'पुण्य' और **भले ही होते हैं ।** क्यों कि उनके कर्मों में उनकी **'मैं–मेरी' वाली सयानप और 'अहम वादी मन–मर्जी नहीं होती** – जिस कारण वह **'कर्म–बद्ध' नहीं होते और यम के चीरे में नहीं आते ।**

इसके **ठीक विपरीत**, समस्त योनियों के शिरोमणी **'इन्सान'** को अकाल पुरूष ने अत्यन्त तीक्षण बुद्धि और आज़ादी की देन बख्शी है ।

परंतु इन्सान अपनी **तीव्र 'मैं–मेरी' वाले सूक्षम 'अहम' की अज्ञानता में** अपनी 'आज़ादी' और 'तीक्षण बुद्धि' को, कर्ता 'अकाल पुरूष' की **रज़ा के विपरीत प्रयोग करता है ।** इस तरह इन्सान 'प्रभु हुक्म' से 'बे–सुर' होकर अहम की अज्ञानता के अँध गुबार में कर्म करता और परिणाम भोगता है ।

मनमुख करम कमावणे दरगह मिलै सजाइ ।। (पृ. ३३)

मनमुख करम कमावणे हउमै जलै जलाइ ।।
जंमणु मरणु न चूकई फिरि फिरि आवै जाइ ।। (पृ. ६८)

मनमुख करम करे बहुतु अभिमाना ।।
बग जिउ लाइ बहै नित धिआना ।।
जामि पकड़िआ तब ही पछुताना ।। (पृ. २३०)

जब इह जानै मै किछु करता ।।
तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ।। (पृ. २७८)

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ॥
ममता मोहु सु बंधना पुत्र कलत्र सु धंधु ॥
जह देखा तह जेवरी माइआ का सनबंधु ॥ (पृ. ५५१)

मनमुखि करम कमावणे हउमै अंधु गुबारु ॥ (पृ. ६४६)

जब इन्सान 'सतसंग' के प्रभाव अधीन कोई, अच्छे, उत्तम, **दैवीय कर्म करता है, तो उस को नेकी, परेपकार, सेवा, दान, पुण्य कहा जाता है ।**

परंतु इन्सान के अंतःकरण में जन्मों–जन्म से 'अह्म' की अज्ञानता का 'भ्रम' दृढ़ हो चुका है, इस लिए इन्सान के दान, पुण्य, सेवा, नेकियाँ, परोपकार आदि भी 'अह्म' के 'गहरे रंग' में 'रंगे होते हैं ।

कोटि करम करै हउ धारे ॥
स्रम पावै सगले बिरथारे ॥ (पृ. २७८)

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ॥ (पृ. ४६६)

मनमुख सेवा जो करे दूजै भाइ चितु लाइ ॥
पुतु कलतु कुटंबु है माइआ मोहु वधाइ ॥ (पृ. १४२२)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ॥
नानक निहफलु जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ॥ (पृ. १४२८)

हमारे सारे **'अह्म–वादी' शुभ कर्मों का 'फल' हमें यहाँ ही 'वाह–वाह' के 'रूप' में मिल जाता है**, जो **बकाया** रह जाता है, वह **यम के चीरे या लेखे में आ जाता है ।**

करम धरम पाखंड जो दीसहि ॥
तिन जमु जागाती लूटै ॥ (पृ. ७४७)

मनमुख चंचल मति है अंतरि बहुतु चतुराई ॥
कीता करतिआ बिरथा गइआ इकु तिलु थाइ न पाई ॥
पुंन दानु जो बीजदे सभ धरम राइ कै जाई ॥ (पृ. १४१४)

बैंक के खाते की तरह– यह दोनों **गुण–अवगुण जीव के अंतःकरण के 'खाते' में साथ–साथ दर्ज होते रहते हैं** । यह 'खाता' हमारे **मायिकी मंडल तक ही सीमित रहता है ।** आगे आत्मिक **'प्रकाश मंडल' में इन**

'अह्मवादी' नेकियों और परोपकार की पहुँच नहीं है और न ही सहायक हो सकते हैं ।

जेते जतन करत ते डूबे भव सागरु नही तारिओ रे ।।
करम धरम करते बहु संजम
अहंबुधि मनु जारिओ रे ।। (पृ. ३३५)

जपु तपु संजमु साधीऐ तीरथि कीचै वासु ।।
पुंन दान चंगिआईआ बिनु साचे किआ तासु ।। (पृ. ५३)

नाम संगि मनि प्रीति न लावै ।।
कोटि करम करतो नरकि जावै ।। (पृ. २४०)

तीरथ नाइ न उतरसि मैलु ।। करम धरम सभि हउमै फैलु ।।
लोक पचारै गति नही होइ ।।
नाम बिहूणे चलसहि रोइ ।। (पृ. ८६०)

करम धरम सुचि संजमु करहि अंतरि लोभु विकार ।।
नानक मनमुखि जि कमावै सु थाइ न पवै ।।
दरगह होइ खुआरु ।। (पृ. १४२३)

उदाहरण के रूप में –

दान देना
सेवा करनी
स्कूल कालिज खोलने
यतीम खाने खोलने
विधवा आश्रम बनाने
दानी संस्थाएं बनानी (charitable trust)
मिशनरी कालेज खोलने
धार्मिक प्रचार
धार्मिक लेखनियाँ
धार्मिक सदन
स्टडी सर्कल
लाइब्रेरियाँ
सुधार संस्थाएँ

आदि, **त्रिगुणी मायिकी 'भ्रम गढ़' के 'अँध गुबार' के अंदर – अंदर,** शारीरिक,

मानसिक, सामाजिक और **धार्मिक मार्गदर्शन, सहायता और सुख के साधन तो बन सकते हैं –** परंतु आत्मिक **'तत् – ज्ञान'** या **'नाम प्रकाश' की प्राप्ति के लिए 'पर्याप्त' नहीं हैं ।**

लरव नेकीआ चंगिआईआ लरव पुंना परवाणु ।।
लरव तप उपरि तीरथाँ सहज जोग बेबाण ।।
लरव सूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ।।
लरव सुरती लरव गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ।।
जिनि करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाणु ।।
नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ।। (पृ. ४६७)

इस का मतलब यह नहीं कि हमें यह **'मानसिक गुण' नहीं धारण करने और सामाजिक कर्म क्रिया नहीं करने ।**

इस मायिकी दुनिया की अज्ञानता के 'भ्रम – गढ़' **में विचरण करते हुए हमारे 'मानसिक जीवन' को सुधारने और सुखदायी बनने के लिए यह 'मानसिक गुण' अनिवार्य ही नहीं बल्कि सहायक और लाभदायक हैं ।**

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै ।।
जे गुण होवनि् साजना मिलि साझ करीजै ।।
साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ ।। (पृ. ७६५ – ६६)

पुंन दान का करे सरीरु ।।
सो गिरही गंगा का नीरु ।। (पृ. ६५२)

जब लगु जोबनि सासु है तब लगु इहु तनु देह ।।
बिनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेह ।। (पृ. २०)

बिनु गुण कामि न आवई माइआ फीका सादु ।। (पृ. ६१)

परंतु **केवल मात्र 'अहम – वादी' नेकियाँ और परोपकार 'आत्मिक प्रकाश' अथवा 'नाम' प्राप्ति के साधन नहीं हो सकते ।**

दूसरे शब्दों में, यह **'अहमवादी' कर्म – क्रिया** अथवा **मानसिक गुणों को ही –**

जीवन मनोरथ समझना
धार्मिक 'शिखर' समझना

मुक्ति का 'साधन' समझना
आत्मिक 'तत्–ज्ञान' का माधयम समझना
आत्मिक 'मंज़िल' समझना
'नाम' का 'प्रकाश' समझना
'नाम' की 'तुलना' देनी

जीव की, अज्ञानता का बडा –

'भ्रम–भुलाव' है ।

काहूँ लै पाहन पूज धरयो सिर काहूँ लै लिंग गरं लटकाइओ ।।
काहूँ लखिओ हरि अवाची दिसा महि काहूँ पछाह को सीसु निवाइओ ।।
कोऊ बुतान को पूतज है पसु कोऊ म्रितान को पूजन धाइओ ।।
कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग
स्री भगवान को भेदु न पाइओ ।। (तव प्रसादि सवँये पाः १०)

(क्रमश.....)